

गद्दी समुदाय के अधिष्ठाता-कुलदेव कार्तिक स्वामी

प्रो. (डॉ.) सुमन शर्मा

कुलसचिव
हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय धर्मशाला

डॉ. भरत सिंह

सहायक आचार्य,
हिंदी विभाग, डीएवी. महाविद्यालयकांगड़ा, हि.प्र.
मो. 8219775906

शोध सार :-

गद्दी समुदाय भगवान शिव के पश्चात जिस अधिष्ठाता देव को अपना आराध्य एवं कुलदेव की संज्ञा देते हैं वह भरमौर जनपद से 28 कि. मी. दूर प्राकृतिक सुषमा से सम्पन्न जैविक गाँव कुगती की तलहटी पर विराजमान 'केलंग' (कार्तिकेय) बजीर हैं। लोकमान्यताओं के अनुसार जब भगवान कार्तिकेय को ज्ञात हुआ कि माता पार्वती ने गणेश का राज्याभिषेक करवा दिया है तो वे क्रोधित हो उठे और माता पार्वती को उनके द्वारा दिए गए शरीर और दूध वहीं अर्पण करके अपना कंकाल स्वरूप लेकर कैलाश पर्वत से निकल पड़े। कहा जाता है कि कैलाश पर्वत से कार्तिकेय स्वामी सीधे कुगती पहुँचे थे और वहाँ पर कुछ देर विश्राम करने के पश्चात लाहौल की ओर प्रस्थान कर गए। कुगती में जिस स्थान पर भगवान कार्तिकेय स्वामी ने विश्राम किया था उस स्थान पर आज भी लोग पूजा करते हैं। लाहौल में कई देवताओं के मनाने के बावजूद भी कार्तिकेय स्वामी नहीं माने और अंततः भोलेनाथ ने स्वयं आकर उनको मनया और उन्हें पुनः कैलाश पर्वत पर चलने को कहा। लेकिन, कार्तिकेय ने भोलेनाथ से कहा कि वह अब कैलाश तो नहीं जाएंगे, किन्तु पिता जी की आज्ञा का पालन करते हुए कैलाश पर्वत के पीछे एक पहाड़ी पर निवास करने का वचन दिया। बताया जाता है कि जिस स्थान को कार्तिकेय ने अपने आवास के लिए चुना उस स्थल को 'शिव-भयाली' कहा जाता है। पौराणिक जनश्रुतियों के अनुसार केलंग, भगवान शिवजी के पुत्र तथा देवताओं के बजीर (सेनापति) हैं। लोकगीतों के अनुसार कार्तिकेय लाहौल के 'केलांग' नामक स्थान से 'बरसैण' उपजाति के पुहाल के नर भेड (मेढा) के सींग पर नाग अथवा संगल/सोट रूप में कुगती की तलहटी में आकर पहुँचे थे। वर्तमान में 'भुणखार' नामक स्थान पर कार्तिकेय अपनी बहन मराली के साथ विराजमान हैं। कहा जाता है कि इस स्थान पर कार्तिक स्वामी की स्वयंभू मूर्ति भी प्रकट हुई है। यह मूर्ति आज भी मन्दिर में विराजमान है। इनका वाहन मोर है।

इस मन्दिर में सदियों से जो प्रथाएं प्रचलित हैं, उनका स्वरूप वर्तमान में भी दृष्टव्य होता है। गद्दी समुदाय का मुख्य व्यवसाय भेड़-बकरी पालन रहा है अतः यह समुदाय अपने रेवड़ सहित पर्वतीय-समतलीय भूभाग में विचरण करते रहते हैं। विचरण की इस प्रक्रिया के निमित्त कुलदेव कार्तिक स्वामी सदैव उनके रक्षक का कार्य करते हैं। गद्दी समुदाय में भगवान कार्तिक स्वामी की इतनी मान्यता है कि इनके परिवार/कुटुंब के किसी एक सदस्य को इनका 'लाण'/लैब (पहनावा, टोप-नुरआर) लगाना अपरिहार्य होता है। इस मन्दिर की विशेषता यह है कि नवम्बर महीने के अंत में इनके कपाट बंद हो जाते हैं और अप्रैल में बैसाखी के दिन विधिवत रूप से खुलते हैं। प्रस्तुत शोध आलेख में भगवान कार्तिक स्वामी की उत्पत्ति, मन्दिर के संदर्भ में लोकमान्यता, 'लाण'/लैब पहनने, कलश रखने की मान्यता, कपाट खुलने और बंद करने आदि के सम्बन्ध में विवेचनात्मक अध्ययन किया गया है।

बीज शब्द : कार्तिक स्वामी, केलंग बजीर, माता मराली, गद्दी, कुगती, भरमौर

मूल आलेख :- देव सेनापति नायक, शिव-पार्वती सपुत्र, तारकासुर संहारक भगवान कार्तिक स्वामी को भारतवर्ष में भिन्न-भिन्न नामों से

जाना जाता है। दक्षिण भारत में इन्हें सुब्रह्मण्यम्, महाराष्ट्र में 'कुमारस्वामी' तथा अन्य क्षेत्रों में 'मूर्गन', गांगेय, गुह, महासेन, कुमार चन्द्र आदि नामों से अलंकृत किया जाता है। वहीं उत्तरी भारत का गद्दी समुदाय इन्हें 'केलंग-बजीर' के नाम से पूजता है। पुराणों और गद्दी लोकसंस्कृति में कार्तिकेय की उत्पत्ति के सम्बन्ध निम्नलिखित मान्यताएँ हैं-

धार्मिक ग्रंथों में कार्तिकेय की उत्पत्ति -

धार्मिक ग्रंथों में कार्तिकेय की उत्पत्ति के सम्बन्ध में दो कथाएँ प्रचलित हैं। "एक कथा के अनुसार इन्हें अग्नि और 'स्वाहा' का पुत्र माना जाता है और दूसरी कथा के अनुसार इन्हें शिव और पार्वती का पुत्र माना जाता है। दौनों दशाओं में इनका जन्म गंगा नदी के पानी में हुआ अतः यह गांडेय के नाम से प्रसिद्ध हुए।" किन्तु इन्हें सर्वदा शिवपुत्र माना जाता है। सृष्टि के आरम्भ में शिवजी को देवताओं के सेनापति का कार्य निभाना पड़ा। काफी समय अपना कर्तव्य निभाते हुए शिवजी थक गए। अतः कैलाश पर्वत पर तपस्या में लीन हो गए। सुअवसर पाकर राक्षसों ने उत्पात मचाना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने इन्द्र का हाथी, कुबेर के एक हजार घोड़े और ऋषि की कामधेनु गाय चुरा ली। इन्द्र जी यह सबकुछ सहन न कर सके अतः वह जंगलों में पलायन कर गए। एक दिन जंगल में क्या देखते हैं 'केसनी' नामक राक्षस ने देवसेना नामक युवती को दबोच लिया है। उसका सतीत्व खतरे में था अतः उसने शौर मचाना आरम्भ किया। भाग्यवश इन्द्र उसकी रक्षा के लिए प्रकट हुए। युवती ने सुरक्षा पाकर इन्द्रदेव से प्रार्थना की कि उसका पति इतना वीर हो कि इन राक्षसों का संहार कर सके। इस वर की प्राप्ति के लिए इन्द्रदेव ब्रह्मा के पास गए। ब्रह्मा ने कहा 'इस प्रकार के वीर का जन्म गंगा के पानी में होगा, वही इस युवती का पति होगा।'

इसी प्रसंग के निमित्त एक बार सप्तऋषि एक स्थान पर हवन करने में व्यस्त थे। अतः अग्निदेव सप्तऋषि की पत्नियों पर मोहित हो गए। वह आशा पूर्ण न होने पर जंगल में चले गए। उधर दक्ष प्रजापति की पुत्री स्वाहा ने मौका पाकर अपना रूप बारी-बारी से सात ऋषियों की पत्नियों का धारण किया और सात बार अग्नि का अंश प्राप्त कर एक सोने के बर्तन में रखा। उस सोने के बर्तन को गंगा नदी में डाल दिया। वहीं कार्तिकेय ने जन्म लिया। यह बच्चा छः राजकुमारियों को मिला वे उसकी सुन्दरता देखकर उन्हें अपनाने का प्रयत्न करने लगीं। कार्तिकेय ने छः मुख धारण कर प्रत्येक की छाती से दूध पिया अतः उन्हें षण्मुख भी कहा जाता है।

वहीं दूसरी कथा के अनुसार देवताओं के महा सेनानायक शिवजी कैलाश पर्वत पर तपस्या में मग्न हो गए। उनकी तपस्या को कोई भी व्यक्ति या देव भंग करने में समर्थ न था। वहीं तारकासुर ने मौका पाकर ब्रह्मा से वर प्राप्त किया कि उसे शिव पुत्र के अतिरिक्त अन्य कोई भी मारने में असमर्थ होगा। वह जानता था कि शिव तपस्या में लीन हैं और उनका पुत्र उत्पन्न होना असम्भव है अतः उसने सोचा अब वह अजर-अमर है। फलस्वरूप उसने देवताओं पर अत्याचार करने शुरू किए। देव उसके उत्पात से आतंकित होकर ब्रह्मा के पास गए। ब्रह्मा ने उन्हें आश्वासन दिया कि गंगा के पानी में शिव-पार्वती के

अंश से एक पुत्र की उत्पत्ति होगी वही तारकासुर का संहार करेगा। देवताओं की इच्छा से सती ने उमा के रूप में जन्म लिया। उमा हिमालय या हिमवान राजा की पुत्री थी। उसने शिव की प्राप्ति के लिए घोर तपस्या आरम्भ की, उधर देवताओं ने कामदेव के माध्यम से शिव की तपस्या भंग करनी चाही। कामदेव ने तपस्या भंग करने हेतु शिव पर कामवाण फेंका। शिव की समाधि भंग हुई तीसरा नेत्र खुला। कामदेव को भस्म कर दिया। देवताओं के आग्रह पर अग्निदेव ने कबूतर का रूप धारण किया तथा शिव-पार्वती का अंश प्राप्त करने में सफल हुए किन्तु उस वीर्य का ताप इतना अधिक था कि अग्निदेव उसे सहन नहीं कर सके अतः अग्निदेव ने उस अमोघ वीर्य को गंगा नदी को सौंप दिया जब देवी गंगा उस दिव्य अंश को लेकर जाने लगी तब उसकी शक्ति से गंगा का पानी उबलने लगा। भयभीत गंगा ने उस द्विय अंश को 'शरवण' वन में लाकर स्थापित कर दिया किन्तु गंगाजल में बहते-बहते वह दिव्य अंश छः भागों में विभाजित हो गया था। भगवान शिव के शरीर से उत्पन्न उत्पन्न वीर्य के उन दिव्य अंशों से छः सुंदर व सुकोमल शिशुओं का जन्म हुआ। उस वन में विहार करती हुई छः कृतिका कन्याओं की दृष्टि जब उन बालकों पर पड़ी तब उनके मन में मातृत्व भाव जागृत हुआ और वह उन्हें अपने साथ ले जानकर उनका लालन-पोषण करने लगी। जब यह प्रसंग नारदमुनि ने माता पार्वती को सुनाया तो वह अपने पुत्र से मिलने के आतुर हो गयी। जब माँ पार्वती ने अपने अपने छह पुत्रों को देखा तो वह मातृत्व भाव से भावुक हो उठी और उन्होंने उन बालकों को इतने जोर से गला लगाया कि वह छः शिशु एक ही शिशु में परिवर्तित हो गए जिनके छः शीश थे। तत्पश्चात शिव-पार्वती ने कृतिकाओं को कार्तिकेय की उत्पत्ति का ध्येय बताते हुए उन्हें अपने साथ कैलाश पर्वत पर ले आए। इस कालान्तर में कार्तिकेय ने तारकासुर का वध किया।

गद्दी लोकसंस्कृति के अनुसार कार्तिकेय की उत्पत्ति :- धार्मिक ग्रंथों के समकक्ष गद्दी लोकथाओं में भी कार्तिकेय की उत्पत्ति की कथा वर्णित है। गद्दी लोकपरम्परा के अनुसार जब शिव किष्किन्धा पर्वत की कन्दरा में तपस्या करने गए तो इसका सुअवसर पाकर दैत्य मनुष्यों का संहार करने लगे। इन्द्रादि समस्त देवताओं ने सृष्टि की भलाई हेतु ब्रह्मा के पास गए। ब्रह्मा स्वयं इस विकट समस्या का निदान करने में असमर्थ थे अतः सभी देवगण विष्णु के पास गए। इस सम्बन्ध में भगवान विष्णु ने कहा 'इस विकट समस्या का समाधान केवल महादेव ही कर सकते हैं।' लेकिन उस समय महादेव किष्किन्धा पर्वत की कन्दरा में साधनारत थे। भगवान शिव को कन्दरा से बाहर लाने हेतु समस्त देवताओं ने उनकी अराधना की। विष्णु भगवान ने मोहिनी का रूप धारण करके नृत्य किया फलस्वरूप शिवजी उस कन्दरा से बाहर आए और विष्णु भगवान का मोहिनी रूप देखकर शिवजी का वीर्य स्खलित हुआ एवं नाभि के रास्ते उसके पेट में चला गया। विष्णु वीर्य के ताप को सहन न कर सके और उसे बाहर निकाल दिया। बाहर निकले हुए वीर्य को एक कबूतर ने खा लिया। उस कबूतर से भी वीर्य सहन नहीं हुआ तो उसने उस वीर्य को अग्नि में डाल दिया। अग्नि से भी वीर्य का ताप सहन नहीं हुआ, तो उसने उक्त वीर्य को समुद्र में फेंक दिया। समुद्र में एक टोकरी में वह वीर्य एक शिशु का रूप धारण करते हुए जलधारा में बहता हुआ आया जहाँ ऋषियों की छः कन्याएं (कृतिकाएं) स्नान कर रही थीं। जब ऋषि कन्याओं ने उस टोकरी में पड़े सुंदर बालक को देखा तो उस बच्चे को उन्होंने अपनी गोद में उठा लिया और अपने आश्रम ले जाकर उसका पालन पोषण करने लगीं। तदोपरांत पार्वती को अपने पुत्र का आभास हुआ और उन्होंने शिवजी से पूछा 'मेरा बच्चा कहाँ है?' तब शिवजी और पार्वती दोनों विष्णु भगवान के पास गए। भगवान विष्णु ने कहा आपकी संतान ऋषि कन्याओं के पास है अतः वह सभी ऋषि कन्याओं के आश्रम में चल पड़े।

जब ऋषि कन्याओं ने त्रिदेवों को अपने आश्रय की ओर आते देखा तो उन्हें भान हो गया कि यह बालक लेने आए हैं। त्रिदेवों ने उनसे पूछा 'हमारा बालक कहाँ है' तो उन कन्याओं ने उक्त बालक के अलग-अलग पाँच मुख लगाए और उनके नाम क्रमशः कुमार, स्कन्द, मूर्गन, षडानन, गुह्य बताए। अंत में ऋषि कन्याओं ने कहा 'आप स्वयं अपने शिशु की पहचान लीजिए। तब महादेव ने अपने असली वीर्य को पहचानते हुए कार्तिक स्वामी के नाम से पुकारा और उन कन्याओं ने बालक कार्तिकेय को उन्हें सौंप दिया। बालक कार्तिकेय को महादेव पार्वती के पास ले आए। पार्वती ने शिवजी से पूछा 'यह छः सिर कहाँ से आए, तो शिवजी ने कहा यह सब हमारे ही अंश हैं। कालान्तर में इन्हीं ऋषि कन्याओं अर्थात् कृतिकाओं के द्वारा लालन-पालन होने के कारण कार्तिकेय नाम पड़ा। इस प्रकार गद्दी लोक मान्यताओं में 'कार्तिकेय' की उत्पत्ति मानी जाती है।

मन्दिर को लेकर लोकमान्यताएँ - लोकमान्यता के अनुसार जब कार्तिकेय और गणेश बड़े हुए तो शिव-पार्वती ने इच्छा प्रकट की कि दोनों पुत्रों में से किसका राज्याभिषेक एवं पूज्य देव माना जाए। प्रतिउत्तर में पार्वती ने कहा जो सर्वप्रथम पृथ्वी की परिक्रमा पूर्ण करके कैलाश पर्वत पर पहुँचेगा उसे सृष्टि का उत्तराधिकारी एवं पूज्य देव घोषित किया जाएगा। अतएव कार्तिक स्वामी अपना रौद्र रूप धारण करके अपने मयूर वाहन पर बैठकर तीव्र वेग से पृथ्वी की परिक्रमा करने निकल पड़े। वही गणेश अपने मूषक की स्वारी पर बैठ गए। जब मूषक अपने बिल में घुसने लगा तो माता पार्वती ने कहा कि गणपति त्रिलोकीनाथ यहीं हैं अतः आप अपने माता-पिता की परिक्रमा करो तुम्हारा राज्याभिषेक और सर्वप्रथम पूज्य देव की उपाधि मिल जाएगी। गणपति ने शीघ्रता से शिव-पार्वती की परिक्रमा की और कहा मेरे लिए माता-पिता ही सबकुछ हैं। अतः महादेव ने प्रसन्न होकर गणेश का राज्याभिषेक करके उन्हें सर्वप्रथम पूज्य देव घोषित कर दिया।

जब कार्तिक स्वामी सृष्टि की परिक्रमा करके कैलाश पर्वत की ओर आ रहे थे तो रास्ते में उन्हें महर्षि नारदमुनि से भेंट हुई। नारदमुनि ने कार्तिक स्वामी को प्रणाम करने के उपरांत कहा- 'कार्तिकेय आप कहाँ से आ रहे हैं? प्रतिउत्तर में कार्तिकेय ने कहा मैं तीव्र वेग से सृष्टि की परिक्रमा करके लौट रहा हूँ अतः अब मैं सर्वप्रथम पूज्य देव बनूंगा। तभी नारदमुनि ने कहा माता पार्वती ने गणपति को इस सृष्टि का उत्तराधिकारी और पूज्य देव घोषित करवा दिया है। जब कार्तिकेय को इस बात का पता चलता है कि माता पार्वती ने गणेश जी का राज्याभिषेक करवा दिया है तो वे क्रोधित हो उठे और तत्काल प्रभाव से उसी समय उनको मांस और दूध वहीं अपर्ण कर दिया और कंकाल स्वरूप लेकर कैलाश पर्वत से निकल पड़े। कहा जाता है कि कैलाश पर्वत से कार्तिकेय सीधे कुगती पहुँचे थे और वहाँ पर कुछ देर विश्राम करने के उपरांत सीधे लाहौल की ओर चल पड़े। कुगती में जिस स्थान पर भगवान कार्तिकेय ने विश्राम किया था, उस स्थान पर आज भी लोग उनकी पूजा-अर्चना करते हैं। लाहौल जाते समय कार्तिकेय काफी क्रोधित थे, और जिस स्थान पर उन्होंने अपना निवास वह सारा स्थल उनके हुंकार से काला पड़ चुका है।

जब महर्षि नारदमुनि कैलाश पर्वत पर पहुँचे तो उन्हें शिव-पार्वती से कहा 'कार्तिकेय रुष्ट होकर लाहौल चले गए हैं। माता पार्वती ने कहा महादेव कार्तिक स्वामी को कैलाश पर्वत पर लाना होगा, अन्यथा उनका रौद्र रूप सृष्टि का विनाश कर देगा। अतएव अपने कंकाल स्वरूप में कार्तिकेय लाहौल में तपस्या करने लगे। कुछ समय पश्चात माता मराली कार्तिकेय के आसपास भेड़-बकरियाँ चराने लगी और उन्हें अपना भाई मानते हुए उन्हें दूध पिला दिया, जिसके

परिणामस्वरूप कार्तिक स्वामी पुनः अपनी वास्तविक काया में आ गए। किन्तु लाहौल में कई देवताओं के मनाने के बावजूद भी कार्तिकेय नहीं माने और अंततः महादेव ने स्वयं आकर उनको मनोया और अपने साथ कैलाश पर्वत चलने को कहा। कार्तिकेय ने कहा आपने गणेश का राज्याभिषेक करवाया है अतः मैं यही तपस्या करूंगा लेकिन कैलाश पर बापिस नहीं जाऊंगा। कार्तिकेय ने कहा 'मैं अपनी माता से असंतुष्ट हूँ और नारी जाति को यह श्राप देता हूँ जो सुहागिन औरतें मेरे छः मुख दर्शन करेगी वह विधवा हो जाएगी। लेकिन, कार्तिकेय ने महादेव से कहा कि वह अब कैलाश तो नहीं आएंगे, लेकिन अपने पिता की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए कैलाश पर्वत के पीछे एक पहाड़ी पर उनका निवास रहेगा। लोकमान्यताओं के अनुसार भगवान कार्तिक स्वामी लाहौल की धरा से निर्वासित होकर नर भेड़ के सींग पर संगल/सोटू (कुछ लोग नाग रूप) रूप में कुगती जनपद में आए थे।

मन्दिर निर्माण के संदर्भ में प्रसंग :- लाहौल से कार्तिक स्वामी ने प्रस्थान किया और सीधे कुगती पहुँच गए। एक मान्यता के अनुसार कुगती का नामकरण कार्तिक स्वामी के नाम से हुआ है। जबकि दूसरी मान्यता के अनुसार कुगती का नाम चार कन्दराओं के नाम से पड़ा है। विदित है कि कार्तिकेय लाहौल से सीधे 'डुगी' नाली एवं वहाँ से 'शिव-भियाली' नामक स्थल पर विराजमान हुए और वहीं पर तपस्या करने लगे। फिर एक दिन दत्तात्रेय वंश के किसी बुजुर्ग को स्वप्न में दर्शन दिए और उनसे कहा 'मैं यहाँ शिव-भियाली में प्रकट हुआ हूँ अतः उक्त स्थान पर मेरी स्थापना करो'। इसके उपरांत वह बुजुर्ग ग्रामीणों सहित शिव-भियाली गए और वहाँ पर कार्तिकेय की स्थापना कर दी। 'शिव-भियाली' अति दुर्गम क्षेत्र होने के साथ-साथ यहाँ पर अत्याधिक बर्फवारी पड़ती थी। जिसके परिणामस्वरूप आमजनमानस के लिए यहाँ पहुँचना अत्यंत कठिन कार्य था। लोकमान्यताओं के अनुसार एक दिन कार्तिकेय के गुर (चेला) ने उनसे आग्रह किया कि 'हे भगवन' मैं वयोवृद्ध हो चुका हूँ और इस दुर्गम स्थान पर आपके सभी भक्त पहुँच नहीं पाते हैं, इसलिए प्रभु आप ऐसे स्थल पर विराजमान हों, जहाँ पर आमजनमानस आसानी से आपके दर्शनार्थ हेतु पहुँच सके। तभी चले के माध्यम से कार्तिकेय ने संकेत दिया कि यहाँ से कूट की थाली अथवा 'भाणा' में 'चणिया का भात' (चावल) से भरा पात्र शिव-भियाली से नीचे गिराओ, पात्र जिस स्थान पर रुकेगा वहीं मेरे मन्दिर का निर्माण कर देना। इसके बाद लोगों ने वैसा ही किया और 'भाणा' पहाड़ी के काफी नीचे आकर ऐसे स्थान पर रुका, जहाँ पर लोगों का पहुँचना काफी सुलभ था। जहाँ 'भाणा' रुका उस स्थान पर लोगों ने खुदाई करना प्रारम्भ कर दी और खुदाई करते हुए उन्हें पत्थर की एक मूर्ति मिली। उसी मूर्ति के स्थान पर उन्होंने कार्तिकेय की स्थापना कर दी।

लोकमान्यताओं के अनुसार जिस स्थान पर कार्तिकेय का वर्तमान मन्दिर बना है, उस स्थान पर पहले पानी की समस्या थी। जैसे ही मन्दिर निर्माण का कार्य प्रारम्भ हुआ जैसे ही पानी के स्रोत की सात जलधाराएँ स्वयमेव ही प्रस्फुटित हुईं जहाँ पर कार्तिकेय की मूर्ति की स्थापना की, वहाँ से भी पानी बहने लगा। बहते पानी से वहाँ पर एक 'डली' (बाबड़ी) बन गयी जिसका नाम 'भुण्खार' है। इसी 'भुण्खार' नामक स्थान पर कार्तिकेय का मन्दिर विद्यमान है। बताया जाता है कि उक्त 'डली' का पानी कार्तिकेय के चरणों से आता है। यह अलौकिक जलधारा बहुत पवित्र और औषधीय गुणों से युक्त है। इस जल से अनेकों बिमारियों का निवारण होता है। कार्तिकेय के मन्दिर के ठीक नीचे पानी का एक 'नाडा' है। उस नाड़े का पानी जहाँ गिरता है वहाँ का रंग लाल है। लोकमान्यताओं के अनुसार उक्त पानी से चर्म रोग दूर होता है। नाड़े का पानी आयरनयुक्त है और उसका स्वाद तांबे के पात्र में रखे पानी के समान

प्रतीत होता है। सम्प्रतिकाल में कुगती में कार्तिकेय का भव्य मन्दिर बना हुआ है। "राजा श्री सिंह(1844-70ई.) ने अष्टधातु की एक स्थानक मुद्रा में मूर्ति दी थी जिसके एक हाथ में दण्ड था। कहा जाता है कि यह मूर्ति कभी चोरी हो गई थी।" जिसके पश्चात "सम्बत (विक्रमी) 2027 को पुजारी परिवार के श्री जोधाराम ने परगना वस्सु के लोगों के सहायता से नव-निर्मित पीतल की मूर्ति चढ़ाई है। इसे श्री पूर्णचंद्र ठठियार ने निर्मित किया है। मूर्ति स्थानक मुद्रा में दायें हाथ में दंड और वायें हाथ में त्रिशूल लिए हैं।"



(केलंग बजीर-कार्तिकेय स्वामी)



(माता-मराली)

केलंग देवता के का रूप सौन्दर्य मूछें, मेखला, यज्ञोपवीत, सिर पर टोप (टोपी), कोढ़ा चोलू कमर में 'नुरआर' (पटका, जिसे कमर में बांधा जाता है) तथा हाथों में दण्ड (छड़ी) के माध्यम से यह स्वष्ट परिलक्षित होता है कि गद्दी समुदाय में केलंग देवता के प्रति असीम श्रद्धा भाव है। गद्दी समुदाय के प्रत्येक परिवारों के ज्येष्ठ पुत्र को कुगती के केलंग मंदिर में आकर त्रिशूल/होटू (छड़ी) तथा 'लाण' (वस्त्र जिसमें ऊनी तोप तथा नुरआर) लगाना रक्षार्थ हेतु अपरिहार्य है। गद्दी समुदाय के अधिकतर लोग केलंग देवता के चिन्ह अपने घरों में ले आते हैं और अपने घर या गाँव में इनका मन्दिर स्थापित कर नित्य-प्रतिदिन पूजा-अर्चना करते हैं।

कार्तिक स्वामी मन्दिर के ठीक सामने 'मराल' पर्वत पर माता 'मराली' (अशोकसुन्दरी) का मन्दिर है। जब 'भुण्खारा' में कार्तिक स्वामी का मन्दिर बना तो कार्तिकेय ने अपने भक्तों से अपनी बहन मराली को मराल पर्वत से लाकर अपने समीप विराजमान करने को कहा। अतः उनकी आज्ञा का पालन करते हुए कार्तिक स्वामी मन्दिर के पास ही थोड़ी चढ़ाई चढ़कर माता मराली का मन्दिर भी स्थापित किया गया। लोग कार्तिक स्वामी मन्दिर के दर्शन करने के उपरांत माता मराली के मन्दिर में पूजा-अर्चना करते हैं। माता मराली कार्तिकेय की बहन है और जहाँ भी कार्तिकेय का मन्दिर होता है वहीं साथ में माता मराली का भी मन्दिर होता है। "गदियों का मूल व्यवसाय भेड़-बकरी पालना है। अतः गडरिए इस देवता को भेड़-बकरियों के रक्षक तथा निर्जन एकांत, वीरान स्थानों पर अपना सहायक मानते हैं। इस देवता का स्वरूप गदियों जैसा है।" भक्तों की मनोती पूर्ण होने पर कार्तिकेय के मन्दिर में घंटी, संगल या छड़ी तथा माला मराली के मन्दिर में त्रिशूल चढ़ाते हैं।

कुगती स्थित कार्तिक स्वामी के मन्दिर के अतिरिक्त कार्तिकेय का एक अन्य भव्य मन्दिर भरमौर जनपद के कुलेठ नामक स्थान पर है। इस मन्दिर में स्थापित मूर्ति के संदर्भ में अमरसिंह रणपतिया लिखते हैं कि- "मूर्ति के छः हाथों में छः चिन्ह इस प्रकार से हैं - तीन दाएँ हाथों में क्रमशः खड्ग, बर्छा और साँप हैं। जैसा की कथा में स्पष्ट है कि कार्तिकेय का जन्म तारकासुर के वध के लिए हुआ था अतः खड्ग

और बर्छा आयुध के द्योतक हैं। साँप मृत्यु का द्योतक है। तीन बाएँ हाथों में क्रमशः कबूतर, डमरू और ध्वजा है। कबूतर अग्नि का दूसरा रूप है। डमरू शिवजी का प्रतीक है।”

मन्दिर में कलश रखने की परम्परा :-

अत्यधिक हिमपात के होने कारणवश 'केलंग' मन्दिर के कपाट छः महीने तक बंद रहते हैं। लोकमान्यताओं के अनुसार छः मास के लिए कार्तिक स्वामी दक्षिण भारत चले जाते हैं। यहाँ सदियों से एक परम्परा चलती आ रही है जिसके अनुसार मन्दिर के कपाट बंद करने से पूर्व गर्भ गृह में पानी की एक गड़वी अथवा कलश रखा जाता है। अतः छः महीने पश्चात जब 13 अप्रैल को मन्दिर के कपाट खुलते हैं तो स्थानीय चले (गुर) तथा पुजारी द्वारा विधिवत रूप से पूजा-अर्चना की जाती है और सर्वप्रथम उस कलश को देखा जाता है। अगर इस अंतराल के उपरांत गड़वी पानी से भरी मिले तो उस वर्ष समूचे भूभाग में अच्छी बारिश, फसल और सुख-समृद्धि होने की भविष्यवाणी मानी जाती है। इसके विपरीत यदि गड़वी में पानी की मात्रा आधी अथवा कम मिले तो उक्त जनपद में सूखे अथवा किसी अप्रिय घटना कि संभावना व्यक्त की जाती है। विवेच्य लोकपरम्परा सदियों से पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही है और वर्तमान में भी परम्परित है।

स्थानीय लोगों की मान्यता के अनुसार शरद ऋतु के आगमन से पूर्व यहाँ पर प्रकृति बर्फ की सफेद चादर ओढ़कर सुप्त अवस्था में चली जाती है, अतः इस कालाब्धि में देवता लोग भी स्वर्ग की ओर प्रस्थान कर जाते हैं। अतएव इस कालखण्ड में देवता 'अंद्रोल' में पड़ जाते हैं और देव कपाट बंद कर दिए जाते हैं। इस अवधि के दौरान मन्दिर कि तरफ जाना और पूजा-अर्चना करना वर्जित माना जाता है। क्योंकि देवताओं के अभाव में किसी अप्रिय घटना होने की आशंका रहती है। इसी के निमित्त कार्तिकेय मन्दिर के कपाट बंद कर दिए जाते हैं। कुछ लोगों का मानना है इस अवधि में कार्तिकेय दक्षिण भारत की ओर प्रस्थान करते हैं।

कार्तिकेय का 'लाण' (पहनावा) -कार्तिकेय गद्दी समुदाय के कुल देव हैं अतएव इस समुदाय के लोगों को इनका लाण (पहनावा) पहनना अपरिहार्य होता है। नुआला पुस्तक में वर्णित है- “कोढ़ा ता लांदा चोल देवा, ढाकनुए नुरआरी” के आधार पर कहा जा सकता है कि कार्तिकेय का 'लाण' अथवा पहनावा भेड़ की ऊन से स्वनिर्मित लाल टोपी, कोढ़ा चोला और नुरआर (कमरबंद) है, जो मफलर की भांति होता है। कार्तिक स्वामी का 'लाण' सर्वदा कुगती मन्दिर में जाकर लगाया जाता है। 'लाण' लगाने की प्रक्रिया मन्दिर के चले तथा पुजारी करते हैं। लाण लगने के उपरांत उक्त व्यक्ति कार्तिकेय का गुर बन जाता है और तदोपरांत उनके मुख से कार्तिकेय की शक्ति का संचरण होता है। ऐसी स्थिति में वह अनेक प्रकार की भविष्यवाणी और दुःख-कष्ट, जादू-टोने आदि को दूर करता है। 'लाण' पहनने वाले व्यक्ति के लिए मांस, मदिरा, मछली, मुर्गा, अंडे आदि का सेवन वर्जित माना जाता है।

विशेष रूप से भादो मास की सक्रांति के दिन विभिन्न क्षेत्रों से लोग यहाँ आकर जात्रों में सम्मिलित होते हैं। भेड़पालन के व्यवसाय के कारणवश बहुत से लोग इस जात्रा के दौरान 'बकरे' की बलि भी देते हैं। कुगती जात्रा के दौरान बहुत से गद्दी परिवार 'केलंग' का 'लाण' लगाते हैं तथा केलंग के प्रधान चले से 'पीठहत्था' (आशीर्वाद) प्राप्त कर केलंग का 'चेला' (गुर) बनते हैं। यह परम्परा वर्तमान में भी विद्यमान है।

निष्कर्ष :-

अन्ततोगत्वा कहा जा सकता है कि शिवनगरी ब्रह्मपुर जनपद की समूची संस्कृति देवी-देवताओं के इर्द-गिर्द घूमती है। यहाँ के देवी-देवता न

बल्कि इनके आस्था के केंद्र हैं अपितु सदैव इनके संगी, साथी, पथ-प्रदर्शक, संबल, सहारा तथा रक्षक आदि भी हैं। यहाँ के देव प्रत्यक्ष रूप से इनसे बातचीत करते हैं, रुठते हैं, मानते हैं और प्रत्येक सुख-दुःख में भागीदार बनते हैं। प्रसंगवश कार्तिक स्वामी तो इनके अधिष्ठाता-कुलदेव हैं। अतएव यहाँ ईश्वर और भक्ति में अद्भुत संगम दृष्टव्य होता है। प्राकृतिक आपदाओं, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, अकाल, संकट आदि सभी परिस्थितियों से कार्तिक स्वामी के प्रतिनिधि गुर, पुजारी आमजनमानस की रक्षा करते हुए सदैव उनके कर्णधार बनते हैं। वास्तव में उपर्युक्त विवेच्य प्रसंग गद्दी लोकसंस्कृति में परम्परित लोकमान्यताओं पर आधारित है। लोकसंस्कृति एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित होती है। ऐसी स्थिति में कार्तिकेय के सम्बन्ध में विवेचित लोकमान्यताओं में कतिपय शास्त्रीय भिन्नता हो सकती है लेकिन उसका भाव शास्त्रीय बंधन के समान है।

संदर्भ सूची:-

1. रणपतिया, अमर सिंह, हिमाचली इतिहास और संस्कृति के अंश, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, 1988, पृ. 115
2. वही, पृ. 60
3. रणपतिया, अमर सिंह, गद्दी भ्रमौर की लोक संस्कृति एवं कलाएं, हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी शिमला, संस्करण, 2010 पृ. 49
4. शर्मा, गौतम व्यथित, हिमाचल प्रदेश लोकसंस्कृति और साहित्य, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, पृ. 35
5. रणपतिया, अमर सिंह, हिमाचली इतिहास और संस्कृति के अंश, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, 1988, पृ. 115
6. डॉ. भरत सिंह, नुआला, रुद्रादित्य प्रकाशन, प्रयागराज, 2023, पृ. 145